पढ़के देखो

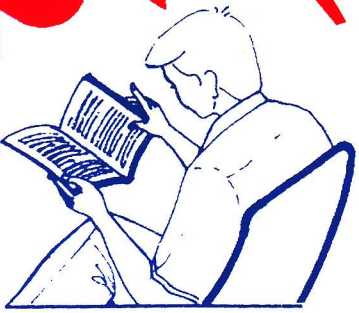

संकलन
श्री गोर

श्री गोर धाम
मुं. नवा ढुवा, ता. वाकानेर
जी. राजकोट (गुजरात)
पीन. ३६३६२१

पढके देखो

लेखक

साधु के वेश मे अेक पथिक

(पू. पथिकजी महाराज)

संकलन : श्री गोरजी

श्री गोर धाम

नवा ढुवा, माटेल रोड

ता. वाकानेर, (फो.)३६३६२१

०१. प्रिय संयोग होते ही मोह रूपी दोष बढने लगता है। लाभ का सुख मिलते ही लोभ रूपी दोष तथा सन्मान का सुख मिलते ही अभिमान रूपी दोष एवं स्पर्श रसादि का सुखास्वाद आते ही काम रूपी दोष बढने लगता है और जितनी बार किसी प्रकारका सुख भोगा जाता है उतनी ही अधिक मात्रा दोष की बढती जाती है । वही दोष, प्रिय वियोग होने पर, हानि होने पर, अपमान होने पर, इच्छा की पूर्ति न होने पर दुःखदाता बनता है ।

०२. यह भी गुरू निर्णय है कि तुम जब कभी दुखी होते हो अशान्त होते हो तब दुःख का कारण अपने भीतर दोष को खोज लो और अशान्ति का कारण अपने ही भीत२ तृष्णा, लोभ, मोह, द्वेषादि को जान लो । तुम अन्य किसी को दुःखदाता मानने की भूल न करो, तुम कही शान्ति पाने के लिए बाहर न भटको और अपने समीप रहनेवाले स्वजनो सम्बन्धियों को भी इसी प्रका२की शिक्षा दो ।

०३. किसी व्यक्ति मे ज्ञान बहुत सुन्दर हो सकता है, विचार बहुत सुन्दर हो सकते है, वेष भुषा त्यागी की तपस्वी की हो सकती है, कीर्तन में स्वर बहुत आकर्षक हो सकता है, आंखों मे भाव की चमक मनोहर हो सकती है पर्न्तु भीतर काम, लोभ, मोह, ममता, ईर्ष्या, द्वेषादि विकार सभी कुछ रह सकते है, इसीलिए किसी व्यक्ति में सम्मोहित होने की भूल से सावधान रहो । ज्ञान को देखो, ज्ञानी में नहीं अटको । त्याग, तप से प्रेम

करो त्यागी, तपस्वी के मोही न बनो। महान आत्मा को जानो देह को रंग रूपकला को सुन्दरता को महात्मा मानकर रागी द्वेषि न बनो।

०४. स्वयं से कुछ और होने की कामना में ही संधर्ष हिंसा और विद्रोह में व्यस्त रहते हुए मानव समाज अशान्त है।

०५. यदि तुम अपने को दुःखी न करो तो भगवान तुम्हें कभी दुःख दे ही नहीं शकता।

०६. यह गुरू सम्मति है कि जो कुछ भी प्रारब्धानुसार प्राप्त है उसमे सन्तुष्ट रहो। जो दूसरों के पास है उसकी कामना न करो। प्राप्त शक्ति सम्पति योग्यता के द्वारा दूसरों की सेवा करो - ऐसा करने से जो नहीं मिला है वह भी मिलता जायेगा।

०७. अज्ञान में दुःखी होकर तुम दूसरों को दुखी अशान्त बनाने के अपराध से सावधान रहो। दुःखी व्यक्ति दूसरों को सुखी देखकर और अधिक दुःखी होता रहता है।

०८. जिसकी प्राप्ति, जिसकी पूर्ति, जिसकी तृप्ति अभी तक नहीं हो सकी उसकी आगे भी नहीं हो सकेगी।

०९. शरीर नहीं रहने वाला अनित्य है। धन, वैभव भी सदा नहीं रहता। मृत्यु शरीर के साथ लगी हुई है इसीलिए धर्म संग्रह कर्तव्य है।

१०. उत्तम श्रध्धा में ही ज्ञान की प्यास होती है। रजोगुणी श्रध्धालु में धन की मान की तथा सांसारिक सुखों की कामना रहती है। आत्मा

में ही पूर्ण प्रेम हो यही सर्वोत्तमश्रध्धा है।

११. जो नित्य निरन्तर नहीं है उस अनित्य में श्रध्धा करना विश्वास करना मूढता मूर्खता है किन्तु जो मूढता मूर्खता में ही सुखी है वह कठिन दुखाधात के बिना अपनी मूर्खता मूढता को समज ही नहीं पाते ।

१२. भोगी व्यक्ति विनाशी की आसक्ति के कारण ही अविनाशी परम आत्मा से विमुख हो

गया है । श्रध्धा होने पर ज्ञान प्रकाश में ही अविनाशी के सन्मुख हो सकता है ।

१३. अनेक नाम रूपों में एक अरूपी अनामी पर२मात्मा विद्यमान है, उसे ही तुम सभी रूपो में देखते रहेने के लिए अन्तर दृष्टि खुलने के लिए ध्यान को साधो । तुम्हारे हृदय में परमात्मा सुख स्वरूप से प्रगट होता रहता है किन्तु तुम वस्तु व्यक्ति को सुख दाता मानकर लोभी, मोही बने हुए हो, इस भ्रम को अस्वीकार कर दो ।

१४. जहां भेदभाव है वहां धर्म नहीं है । जहां द्वैत है कोई पराया दीखता है वहा धर्म नहीं हैं । जहा भय है घृणा है शत्रुता है संगठन की उपेक्षा है वहां अधर्म सामने है ।

१५. यदि तुम धर्म का ध्यान ज्ञान छोड कर धन चाहते हो मान चाहते हो सुखोपभोग करते हो तब तो कितने ही अधिक धन से पदाधिकार से तथा सुख सामग्री से सम्पन्न हो जाओ अन्त में भय, चिन्ता, शोक, उपाधि, व्याधि के दुख से बच ही नहीं सकते ।

१६. जो साधक मानसिक परतन्त्रता से मुक्त हो जाता है उस पर राजनैतिक सामाजिक आर्थिक परतन्त्रता का प्रभाव नहीं पडता ।

१७. तुम्हारे प्रति दुसरों के द्वारा जो कुछ भी प्रतिकूल वर्ताव हो उसे निर्यति मानकर शान्त रहो ।

१८ अपनी प्रशंसा सुनकर यदि तुम प्रसन्न होते हो तो निन्दा र [illegible] क [illegible] मत होना पडेगा ।

अनेक व्यक्ति अपनी अधिक प्रशंसा झुठी प्रशंसा सुनकर प्रसन्न होते है लेकिन परमेश्वर

की सच्ची प्रशंसा करने में तत्पर नहीं होते ।

१९. जब तुम्है भय प्रतित हो चिन्ता सताये तब अपना निरीक्षण करो और देखो कि कौन सी चाह चिन्तित बना रही है, कौन सा लोभ भयातुर बना रहा है ।

२०. कामना छोडकश्वर घर में रहना संन्यास है । इच्छाओ को लेकर संन्यास लेना गृहस्थ ही बने रहना है । इच्छाओ के त्याग से घर ही आश्रम हो जायेगा ।

इच्छावान यदि आश्रम में रहेगा तब भी वह घर में ही रहेगा । इच्छा रहित संन्यासी के दर्शन बहुत ही दुलर्भ है। मन रूपी वृक्ष में इच्छाये कामनायें पत्तो के समान है। एक पत्ता टुटते ही उसी मे दुसरा अंकुरीत दीखने लगता है । इसी प्रकार एक इच्छा के टुटते ही दुसरी उत्पन्न होती है ।

२१. यह भी गुरू निर्णय है कि जब तुम किसी से अधिक कुछ भी चाहते हो तो यह चोरी होगी

इसीलिये अधिक पाने की तृष्णा छोडकर जो कुछ तुम्हारे भरण पोषण से बच जाता है । उसे उन लोगों को देना चाहिये, जिनके पास तुमसे कम है ।

२२. जगत को जानने के लिए मन की बुध्धि की आवश्यक्ता है । सत्य के लिए मन -बुध्धि बाधक बनते है ।

२३. ममता और२ कामना से ही भेद तथा अनेक संधर्ष उत्पन्न होते है ।

२४. तुम अपने को सर्व श्रेष्ठ बनाने का प्रबन्ध न करो वरन् अपने को जान लो ।

तुम हिंसा को छोडने का व्रत न लो प्रेम को जाग्रत करो ।

२५. यह भी गुरू निर्देश है कि जब तक तुम लोभी हो कामी हो तब तक तुम्हें धन का तथा स्त्री का त्याग ही महान त्याग दीखेगा ।

२६. यह भी गुरू निर्णय है कि अहंकार सदा मांगता

ही रहता है और अधिक से अधिक पाकर भी यह तृप्त, शांत नहीं होता । अहंकार को ही धन की मान की पद की सुखोपभोगकी तृष्णा रहती है । अहंकार ही अज्ञानी, ज्ञानी, भोगी, तपस्वी, त्यागी, वीरागी, गृहस्थ, सन्यासी आदी बनता रहेता है । बने हुए अहंकार को सावधान साधक ही देख पाते है । चाहो के रहते अहंकार दरीद्र ही रहता है ।

२७. गति प्रगति उन्नति का भोगी अहंकार से असावधान रहने के कारण किसी दिन

अचानक अद्योगति, दुर्गतिका भोगी बनता है।

२८. तुम दुसरों की निन्दा करते हो, किसी को देखकर हंसते हो, धृणा करते हो, तब तुम नही देखते हो कि दूसरा व्यक्ति कितना दुःखी हो रहा है । पर२न्तु तुम्हारे प्रति जब ऐसा व्यवहार कोई करता है तब तुम दुःखी होते हो ।

२९. दुःखी होकर सुख चाहने वाले लाखो भोगी हैं लेकिन दुःखी होकर दुःख निवृति का उपाय करने वाले कोई विवेकी साधक ही होते हैं ।

३०. जो दूसरों को बदलने के लिए दुसरों के सुधार के लिए प्रयत्न करता रहता है वह गुण, ज्ञान का अभिमानी अहंकार ही है ।

३१. लोभी धन देने में कंजूस होता है, तुम मुस्कराने में हंसने में तो कंजूसी न करो ।

३२. पुण्य-दान के लिए मनुष्य बहुत सोचता है, ठहर जाता है। परंतु पाप तत्काल ही कर डालता है। यदि तुम कोई हिन्सात्मक पाप करने के लिए चौबीस धण्टे ठहर जाओ तब

तो कभी कोई पाप बन ही नहीं सकता ।

३३. यदि तुम संसार प्रपंच से अपने को भरे रहोगे तब परमात्मा को बाहर ही खोजते रहोगे ।

३४. अहंकार सहित दान करने से, त्याग तथा तप करने से अहंकार ही पुष्ट होगा शान्ति सुलभ नहीं होगी । अहंकार भिखारी और२ दरिद्र होने के कारण प्रेम की महिमा को नहीं देख पाता ।

३५. जब तक अहंकार भजन करेगा, त्याग तप करेगा, सेवा करेगा, दान करेगा तब तक भोग का अन्त नहीं होगा ।

३६. तुम अपने को त्यागी देखने के लिए व्याकुल नहीं बनो । क्योंकि अपनी इच्छासे न त्याग कर सकते हो, न ग्रहण कर सकते हो ।

३७. जब तक हम देह में, धन में, परिवार में, संयोग-भोग में आसक्त है, अटके हैं तब तक विराट परमात्मा का अनुभव नहीं कर सकते ।

३८. जब तक तुम सुबुध्धि द्वारा प्रपन्च में व्यस्त वाणी को मन, चित्त को वश में नहीं कर लेते हो तब तक तुम्हारे जप, तप, व्रत, दान का प्रभाव क्षीण होता रहेगा ।

३९. भगवान के किर्तन गुणगान करने में कोई मद ही रोक देता है ।

४०. हजारो नर नारी मन्दिरों में तीर्थो में दर्शन करने जाते है। सन्त महात्मा के दर्शन करते

हुए पाप नाश की एवं बडे फल की कल्पना करते हैं परन्तु खेद की बात हैं कि वे अपने भीतर अहंकार को नहीं देख पाते ।

४१. तुम जिसे भुला नहीं सकते, हटा नहीं सकते, जिसे रोक नहीं सकते उसी के आधीन - इस पराधीनता को देखना ही स्वाधीन होने का मुहूर्त है ।

४२. जो करना चाहिए उसे पूर्ण करदो तब जो होना चाहिए वह स्वतः ही हो जायेगा ।

४३. जिसमें काम, कोध, लोभादि विकार नहीं होते उसे किसी नियम में बंधने की आवश्यकता नहीं रहती ।

४४. अपनी मान्यता अनुसार जप, पूजा, पाठ, आदि से पूर्णतया भय से चिन्ताओं से मुक्ति नहीं मिलती । आत्मा के बोध से ही तुम अभय हो सकते हो ।

४५. इस देह रूपी पुरी में अज्ञानी - जंन दास बन कर रहते है, ज्ञानि महापुरूष सम्राट होकर रहते है ।

४६. जब तक तुम लोभ वश धन के संग्रह में सन्तुष्ट होते रहोगे तब तक भय से, दुःख से नहीं बचोगे और आत्म ज्ञान से विमुख रहोगे।

४७. जितने अधिक संग्रही धनी होते हैं उतने अधिक गरीब देखे जाते है । जितने अधिक लाभ से सुखी होते है उतने अधिक सम्पति के छिनने पर दुःखी देखे जाते है ।

४८. जो अपने लक्ष्य से अथवा प्रभु से विमुख बना दे वही पाप है ।

जिससे पतन हो वही पाप है।

५९. समस्त पाप अहंकार में, अभिमान अज्ञान के आश्रय से पुष्ट होते हैं ।

५०. साक्षी भाव से मौन रहेनें का अभ्यास बढाइये ।

५१. अहंकार शून्य होने पर प्रेम के पूर्ण होने पर स्वयं और प्रभु के बीच की दूरी मिट जाती है।

५२.सारी उन्नतियों का अन्त पतन है ।

५३.संम्पूर्ण संग्रहोंका अन्त विनाश है ।

५४.समस्त संयोगोंका आदि अन्त में दुःख है ।

५५.अपना स्वरूप परमानन्द परमात्मा है ।

५६.सद्गुणों के विकास में प्रीतिपूर्वक श्रध्धा सहित सेवा करना अत्यन्त आवश्यक है ।

५७.सद्भाव के विकास में मूर्तिपूजा सहायक है । परन्तु प्रेम भाव से रहित मूर्तिपूजा पत्थर की ही पूजा है ।

५८. कुविचार से, उतावली से, द्वेष से, किसी का बुरा चाहने से अनावश्यक वस्तु संग्रह से हिंसा पुष्ट होती है ।

५९. अधोमुखी प्रेम का प्रवाह नीचे उतर कर काम बन जाता है, ऊधर्वमुखी काम, विज्ञानमय कोष के ऊपर उठकर प्रेम में परिणत हो जाता है ।

६०. मनुष्य के भीतर प्रेम जितना गम्भीर२ होगा, मानवता उतनी ही ऊँची होगी । प्रेम

जितना छिछला होगा मानवता उतनी ही हल्की होगी और अहंकार उतना ही कठोर जड होगा ।

६१. स्वयं के भीतर जिसका निरन्तर वास है उसे जान लेने पर प्रेम उत्पन्न होता है। प्रेम ही मानव को पशुता के मोह से मुक्त बनाकर प्रभु तक ले जाता है।

६२. अहंकार जगत् की जडता से बंधा है। प्रेम में आत्मा का बोध होता है।

६३. पत्थर की मूर्ति की भांती प्रेम भी अनावृत किया जाता है । निरावरण प्रेम में ही परमानन्द की झांकी मिल जाती है ।

६४. प्रेम रहित पांडित्य से अहंकार पुष्ट होता है । प्रेम के विस्तार में साधक शून्य हो जाता है, शून्य होने पर पूर्ण का अनुभव खुलता है ।

६५. अज्ञान में जो हम नहीं है वह अपने को मान लिया है और जो दुसरे नहीं हैं वह उन्हें समजा दिया है।

६६. अपने भीतर साधना का आरम्भ शून्य से होना चाहिए अपने से बाहर२ साधना का प्रारम्भ प्रेम से होना चाहिए ।

६७. प्रेम ही परमात्मा की भाषा है, प्रेम में जगत् के शब्द खो जाते है । मोह में सभी मानव सत्यानंद के प्रति सो जाते है।

६८. परमात्मा निरंतर२ है परन्तु अहंकार से ढका सा है।

६९. मन्दिरों में प्रायः सभी भिखारी बन कर

मांगने ही जाते हैं । आप शान्ति संन्तोष कृतार्थता से भरे हुए प्रभु को धन्यवाद देने जाओ ।

७०. उमा योग जपज्ञान तप, नाना भाव व्रत नेम ।
राम कृपा नहिं करहिं तस, जस निस्केवल प्रेम ।

प्रेम की, ज्ञान की, आनन्द की पूर्णता ही परम सिध्धि है। स्वयं की आत्यन्तिक सत्ता से जो अपरिचित है वही बाहर आनन्द की खोज में भटकते है।

हमारे अन्य प्रकाशन

* अ-मन तळपत * चकमक लोढु घसता-घसता *
* मेरू तो डगे * पथिक प्रश्नोत्तरी *
* संतवाणी (पू. श्री शरणानंदजी महाराज के साथ प्रश्नोत्तरी *
* पथिक प्रसादी * नारद भक्ति सूत्र *
* समग्र ओर शून्य * आत्मबोध *
* नित्य पाठ *

ये पुस्तके निचे दर्शायै स्थल पे बिना मुल्य मीलेंगी

अशोक उपाध्याय
मेष जीवन आराधना मंदिर
आडेसरा (कच्छ)
पीन - ३७०१५५

श्री गोर धाम
नवाढुवा, माटेल रोड़,
ता. वाकानेर जी. राजकोट
पीन - ३६३६२१